निवेदन

गांधीजी मई १८९३ में दक्षिण अफ्रीका में बसे एक भारतीय व्यापारी के किसी कानूनी झगड़े को सुलझाने के लिये वहाँ गये। वहाँ के गोरे लोगों में भारतीय, चीनी आदि अश्वेत लोगों और वहाँ के मूलनिवासी काले लोगों के विरुद्ध गहन भेदभाव व्याप्त था। इस के व्यक्तिगत अनुभव उन्हें वहाँ पहुँचने की कुछ ही दिनों में होने लगे। उन्हीं दिनों वहाँ की औपनिवेशिक सरकारों ने गोरे समाज में व्याप्त भेदभाव को कानूनी रूप देने का एक नया प्रयास शुरू कर दिया। विशेषतः नटाल एवं ट्रांसवाल में अनेक नये रंगभेदी कानून बनाये जाने लगे। दक्षिण अफ्रीका पहुँचने के एक साल के भीतर गांधीजी ने ऐसे कानूनों का विरोध एवं प्रतिकार करने के लिये वहाँ के भारतीयों को संगठित करना शुरू कर दिया। जिस कानूनी झगड़े के संदर्भ में वे वहाँ गये थे वह तो साल भर में सुलझ गया, पर दिन-प्रतिदिन बनाये जा रहे नये-नये अपमानजनक रंगभेदी कानूनों के विरोध में भारतीयों की लड़ाई का संचालन करने के लिये वे वहाँ इक्कीस साल रुके रहे।

इस विकट एवं लंबी लड़ाई के प्रारंभ से ही गांधीजी को यह स्पष्ट था कि यह लड़ाई भारतीयों के लिये कोई विशेष अधिकार अथवा सुविधा पाने के लिये नहीं, अपितु उनकी सभ्यतागत एवं मानवीय अस्मिता की रक्षा करने के लिये है। तब तक उन्हें यह आभास हो चुका था कि यूरोप की आधुनिक सभ्यता अनीति, असत्य एवं अधर्म पर टिकी है। इसलिये, प्रारंभ से ही वे इस लड़ाई को अनीति, असत्य एवं अधर्म के विरुद्ध न्याय, सत्य एवं धर्म की रक्षा के रूप में प्रस्तुत करते हैं और वहाँ के भारतीय समाज में यह भाव उत्पन्न कर पाते हैं कि वे किसी साधारण आंदोलन में नहीं अपितु एक बड़े धर्मयुद्ध में जुटे हैं। दक्षिण अफ्रीका में चल रही रंगभेदी कानूनों की बाढ़ को तो गांधीजी मात्र थोड़ा-सा ही थाम पाये। पर वहाँ के भारतीयों की अस्मिता की रक्षा तो वहाँ के भारतीयों में संगठित होकर एक बड़ा धर्मयुद्ध लड़ने के भाव के जागरण से ही हो गयी, ऐसा माना जा सकता है।

लड़ाई को इस प्रकार परिभाषित करने के साथ ही गांधीजी के सामने यह प्रश्न उठता है कि अनीति, असत्य एवं अधर्म के विरुद्ध नीति, सत्य एवं धर्म की रक्षा के लिये लड़ी जाने वाली लड़ाई का हथियार क्या हो? लंबे संघर्ष, चिंतन एवं ऊहापोह के पश्चात् अंततः १९०६ में वहाँ का भारतीय समाज एवं वे साथ-साथ ही 'सत्याग्रह' की अवधारणा

पर पहुँचते हैं। सितंबर ११, १९०६ के दिन जोहंसबर्ग में हुई एक बड़ी जनसभा में यह व्रत लिया जाता है कि अब हम अनीति, असत्य एवं अधर्म पर आधारित कानून को नहीं मानेंगे और कानून की इस अवहेलना के लिये निर्धारित सजा सहर्ष भोगेंगे। यह पहला सत्याग्रह अनेक वर्षों तक चलता है। अनेक भारतीय अनेक बार दक्षिण अफ्रीका की जेलों के भयंकर कष्ट भोगते हैं, अनेक बड़े व्यापारी अपना सब कुछ खोकर कंगाल हो जाते हैं, अनेक लोग अपनी और अपने स्नेहियों के प्राणों की आहुति देते हैं, गांधीजी स्वयं और उनके ज्येष्ठ पुत्र हरिलाल अनेक बार जेल जाते हैं, एक बार तो कस्तूरबा को भी जेल जाना पड़ता है। सत्य एवं धर्म की रक्षा के लिये इस प्रकार सहर्ष कष्टों का सामना करते हुए भारतीयों का आत्मसम्मान एवं आत्मबल बढ़ता चला जाता है, सत्याग्रह का स्वरूप और स्पष्ट एवं प्रखर होता चला जाता है।

१९०६ से प्रारम्भ हुए सत्याग्रह में ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता एवं अंग्रेजी लोगों का समर्थन जुटाने के लिये गांधीजी दो बार लंदन जाते हैं, पहली बार १९०६ में और फिर १९०९ में। दूसरी बार के अपने लंदन प्रवास में वे प्रायः चार महीने वहाँ रहते हैं। इस अवधि में उन्हें आधुनिक सभ्यता की उस समय की अग्रणी वाहक अंग्रेजी सरकार, वहाँ की संसदीय एवं अन्य व्यवस्थाओं और इन को चलाने वाले वहाँ के उच्च समाज को निकट से समझने-देखने का अवसर मिलता है। इन सब को देखकर उनका यह निश्चय और भी दृढ़ हो जाता है कि यूरोप की आधुनिक सभ्यता और वहाँ की सब व्यवस्थाओं का आधार अनीति, असत्य एवं अधर्म में है। और सत्याग्रह नीति, सत्य एवं धर्म की रक्षा करते हुए आधुनिक सभ्यता के मूल में व्याप्त अनीति, असत्य एवं अधर्म के प्रतिकार का अचूक एवं एकमेव मार्ग है।

ये दोनों बातें गांधीजी अपने लंबे चिंतन, अनुभव एवं संघर्ष में पहले ही जान चुके थे। लगता है कि १९०९ के अंग्रेजी उच्च समाज के अनुभव से उनमें अपने चिर-निश्चित विचारों को शीघ्र लिख डालने का निश्चय भी बना। नवंबर १९०९ में वे सत्याग्रह को और आगे बढ़ाने का मन बना कर इंग्लैंड से दक्षिण अफ्रीका के लिये रवाना हुए। मार्ग में जहाज पर बिताये १४ दिनों की अवधि में अपनी अनेक अन्य व्यस्तताओं के बीच उन्होंने ‘हिंद स्वराज्य’ लिखा। जोहंसबर्ग पहुँचते ही उन्होंने इसे अपनी साप्ताहिक पत्रिका ‘इंडियन ओपीनियन’ में छापने का उपक्रम प्रारंभ कर दिया। गांधीजी २ दिसंबर १९०९ को जोहंसबर्ग पहुँचे। हिंद स्वराज्य का आधा भाग ‘इंडियन ओपीनियन’ के ११ दिसंबर १९०९ के अंक में और दूसरा आधा भाग १८ दिसंबर के अंक में छपा।

हिंद स्वराज्य का मुख्य कथ्य तो ये दो ही बातें हैंः एक, आधुनिक यूरोपीय सभ्यता और इसकी सब व्यवस्थाएं अनीति एवं अधर्म पर टिकी हैं, ऐसी सभ्यता तो वास्तव में

असभ्यता है, एक बीमारी है। और दो, सत्याग्रह इस बीमारी से छुटकारा पाने की एकमेव और अचूक औषधि है। इस ग्रंथ को लिखने का उत्साह तो गांधीजी अपने दक्षिण अफ्रीका के अपने सत्याग्रह के अनुभव के आधार पर ही पाते हैं, परंतु उनका ध्यान भारतवर्ष और अपनी सनातन धर्मसम्मत सभ्यता पर है। हिंद स्वराज्य के माध्यम से वे भारतभूमि और भारतीय सभ्यता को अंग्रेजी आधिपत्य से छुटकारा दिलवाने का मार्ग ढूँढ़ रहे हैं। इसलिये, वे हिंद स्वराज्य के मूल कथन का प्रतिपादन भारत की उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं वैश्विक परिस्थिति के संदर्भ में ही करते हैं। अनुभव से वे जानते हैं कि सत्याग्रह सफल तब ही हो पायेगा जब संपूर्ण समाज मिलकर इस में भाग लेगा। इसलिये वे कांग्रेस के अंदर गर्म एवं नर्म दलों के बीच और हिंदुओं एवं मुसलमानों के बीच समन्वय की विस्तृत चर्चा करते हैं। रेलवे, अदालतों, वकीलों, डाक्टरों एवं नयी अंग्रेजी शिक्षा के कारण समाज के बिखरने और आत्मविश्वास से भटकने की चिंता भी करते हैं। और नयी यांत्रिक उत्पादन व्यवस्था से भारतीय अर्थ-व्यवस्था एवं संयमित उपभोग के भारतीय अनुशासन को बचाने के लिये स्वदेशी का मार्ग भी दिखलाते हैं। पर इस सब के पीछे का ध्येय तो भारत की धर्मसम्मत सभ्यता को आधुनिक सभ्यता के अधर्म से बचाने हेतु भारत के लोगों को सत्याग्रह के लिये तैयार करना ही है।

हिंद स्वराज्य एक सिद्ध ग्रंथ है। बीसवीं सदी के प्रारंभ पर यूरोप की आधुनिक सभ्यता का सब ओर बोलबाला था और भारत १५० वर्षों से अंग्रेजों की गुलामी झेल रहा था। उस समय इस ग्रंथ में भारतीय सभ्यता और भारत के लोगों की महत्ता एवं सहज धार्मिक वृत्ति का प्रतिपादन हुआ और साथ ही भारत के इस संकल्प का उद्घोष भी हुआ कि अब भारत अनीति, असत्य और अधर्म को और सहन नहीं करेगा, अधर्म का धर्म से – सत्याग्रह से – प्रतिकार किया जायेगा।

इस ग्रंथ की प्रस्तावना में गांधीजी कहते हैं कि जब मुझसे रहा नहीं गया तब ही मैंने इसे लिखा है। इंग्लैड से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए वे इस ग्रंथ को लिख डालने की उतावली में दिखते हैं। इतने मनोयोग से इस काम में लगते हैं कि जब लिखते-लिखते दाहिना हाथ थक जाता है तो बाँयें हाथ से लिखने लगते हैं। सिद्ध ग्रंथ कुछ ऐसे ही प्रकाशित हुआ करते हैं।

सुयोग से गांधीजी की हस्तलिपि की फोटोप्रति नवजीवन प्रेस ने विक्रमी संवत् १९७९ में छाप दी थी। उस फोटोप्रति को अक्षरशः गुजराती लिपि में बद्ध कर हिंद स्वराज्य को अपने मूल स्वरूप में हम इसी वर्ष पहले छाप चुके हैं। उस प्रामाणिक संस्करण को गुजराती लिपि में छापने के साथ-साथ हमने गुजराती पाठ को देवनागरी लिपि में भी छापा

था और उसके समानान्तर मूल पाठ का हिंदी शब्दानुवाद दे दिया था। उस प्रयास का उद्देश्य था कि हिंदी जगत् के पाठक अनुवाद को पढ़ते हुए मूल गुजराती को भी समझ पायें। इसलिये जहाँ तक संभव हो पाया उस अनुवाद में शब्दों के क्रम को भी मूल गुजराती वाक्य के अनुरूप ही रख दिया था। उसी समय हमने हिंद स्वराज्य के स्वयं गांधीजी द्वारा १९१० में किये गये अंग्रेजी अनुवाद को भी अपने मूल रूप में छापा था।

उपरोक्त प्रामाणिक संस्करण मुख्यतः हिंद स्वराज्य के विद्वानों के लिये थे। इस दृष्टि से हमने उन संस्करणों में प्रचुर संपादकीय सामग्री का समावेश भी किया था। अब इस पुस्तक में हम सामान्य पाठक के लिये हिंद स्वराज्य का सहज हिंदी रूपांतरण छाप रहे हैं। यह अनुवाद भी अधिकांश गांधीजी के मूल गुजराती पाठ के अनुरूप ही चलता है, गुजराती पाठ के प्रवाह एवं लय को भी बचाये रखने का भरसक प्रयास हमने किया है।

हिंद स्वराज्य के मूल गुजराती पाठ में गांधीजी कुछ ऐसे सुनायी देते हैं जैसे कोई सयाना बुजुर्ग चौपाल में बैठ कर नीति, सत्य, धर्म एवं कर्त्तव्य की बातें समझा रहा हो। हमें आशा है कि इस अनुवाद को पढ़ते हुए हिंदी पाठक गांधीजी के उस रूप के किंचित् दर्शन कर पायेंगे और गांधीजी की बातों को उन्हीं के शब्दों में सुन पायेंगे। कदाचित् उनकी इन बातों को सुनते हुए, उनके कहे अनुरूप व्यवहार करने का साहस भी हम सब में आ पाये।

प्रस्तुत हिंदी अनुवाद को अंतिम रूप देने में श्री बनवारी और श्री सूर्यकांत बाली ने उदारतापूर्वक अपना समय एवं सहयोग दिया है। श्री मण्डयम् श्रीनिवास का सहयोग तो सब कार्यों में सर्वदा मिलता ही रहता है। मैं अपने इन अग्रज साथियों का आभारी हूँ।

आश्विन शुक्ल षष्ठी, कलि ५११३
अक्तूबर २, २०११ **जितेन्द्र बजाज**